REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 6 | MARCH - 2018

प्रेम और श्रद्धा का अन्तर

डॉ.विमल ग्यानोबा सूर्यवंशी

प्रेम और श्रद्धा में अन्तर यह है कि प्रेम स्वाधीन कार्यों पर उतना निर्भर नहीं कभी–कभी किसी का रूप मात्र, जिसमें उसका कुछ भी हाथ नहीं उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होने का कारण होता है पर श्रद्धा ऐसी होती है किसी की सुन्दर आँख या नाक देखकर इसके प्रति श्रद्धा नहीं उत्पन्न होगी, प्रीति उत्पन्न हो सकती है। प्रेम के लिए इतना ही बस है कि कोई मनुष्य हमें अच्छा लगे, पर श्रद्धा के लिए आवश्यक यह है कि मनुष्य किसी बात में बढा हुआ होने के कारण हमारे सम्मान का पात्र हो।

श्रद्धा का व्यापार–स्थान विस्तृत है, प्रेम का एकांत प्रेम में घनत्व अधिक है और श्रद्धा में विस्तार किसी मनुश्य से प्रेम रखने वाले दो ही एक मिलेंगे।

हमारे अन्तःकरण में प्रिय के आदर्श रूप का संघटन उसके शरीर या व्यक्ति मात्र के आश्रय से हो सकता है। प्रिय चिन्तन हम आँख, मूंदे हुए संसार का कुछ अंश सामने रककर करते है। यदी प्रेम स्वप्न है तो श्रद्धा जागरण है। प्रेम प्रिय को अपने लिए और अपने को प्रिय के लिए संसार से अलग करना चाहता है। प्रेम में केवल दो पक्ष होते है, श्रद्धा में तीन। प्रेम में कोई मध्यस्थ नहीं पर श्रद्धा में मध्यस्थ अपेक्षित है।

प्रेमी और प्रिय के बीच कोई और वस्तु अनिवार्य नही पर श्रद्धालु और श्रद्धेय के बीच कोई वस्तु चाहिए। इस बात का स्मरण रखने से यह पहचानना उतना कठीन न रह जायेगा कि किसी के प्रति किसी का कोई आनन्दान्तर्गत भाव प्रेम है या श्रद्धा। यादी किसी कवि का काव्य बहुत अच्छा लगा। किसी चित्रकार का बनाया चित्र बहुत सुंदर और हमारे चित्त में इस कवि या चित्रकार के प्रति एक सुंदर मत अपना हुआ तो वह श्रद्धा है क्योंकि यह श्रद्धा का चित्ररूप मध्यस्थ द्वारा प्राप्त हुआ है।

अनेक व्यक्ति का कहना है कि प्रेम किया जाता नहीं हो जाता है, लेकिन मुझे लगता है प्रेम किया जाता जब हम किसी को चाहते है उनके लिए भाव निर्मान हो , हमें कोई अच्छा लगे तो हम उसके ओर आकर्षित होते है और प्रेम करते है। प्रेम करनेवाले अलग–अलग व्यक्ति समाज में मिलते है। एक स्वार्थी और दूसरा निस्वार्थी। प्रेम हर दिल में होता है, ओर किसको करना उसकी अपनी मर्जी है।

प्रेम का कारण बहुत कुछ अनिर्दिष्ट और अज्ञान होता है पर श्रद्धा का कारण निर्दिष्ट और ज्ञान होता है। कभी–कभी केवल एक साथ रहते रहते दो प्राणियों में यह भाव उत्पन्न हो जाता है कि वे बराबर साथ रहे. उनका साथ कभी न छूटे। प्रेमी प्रिय के सम्पूर्ण जीवन क्रम के सतत साक्षात्कार का अभिलाषी होता है। वह उसका उठना, बैठना, चलना, फिरना, सोना, खाना, पीना सब कुछ देखना चाहता है। संसार में बहुत से लोग उठते बैठते चलते फिरते है, पर सबका उठना बैठना, चलना फिरना उसको वैसा अच्छा नहीं लगता।

प्रेमी प्रिय के जीवन को अपने जीवन से मिलाकर एक निराला मिश्रण तैयार करना चाहता है। वह दो से एक करना चाहता है। प्रेम और श्रद्धा के योग का नाम भक्ति है। जब पूज्यभाव की वृद्धि के साथ श्रद्धा के सामीप्य लाभ की प्रवृत्ति हो, उसकी सत्ता के कई रूपों के साक्षात्कार की वासना हो, तब हदय में भक्ति का प्रादुर्भाव समझना चहिए। जब श्रद्धेय के दर्शन, श्रवण कीर्तन, ध्यान आदि से आनन्द का अनुभव होने लगे जब उससे सम्बन्ध रखने वाले श्रद्धा के विषयों के अतिरिक्त बातों की और भी मन आकर्षित होने लगे, तब भावना रस का संचार समझना चहिए । सारांश यह कि श्रद्धा में दृष्टि पहले कर्मों पर से होती हुई श्रद्देय तक पहूँचती है और प्रीति में प्रिय पर से होती हुई उसके कर्मों आदि पर आ जाती है। एक में व्यक्ति को कर्मों द्वारा मनोहरता प्राप्त होती है, दूसरी में कर्मों को व्यक्ति द्वारा एक में कर्म प्रधा न है दूसरी में व्यक्ती।

किसी के रूप को स्वयं देखकर हम तुरन्त मोहित होकर उससे प्रेम कर सकते है पर उसके रूप की प्रशंसा किसी दूसरे से सुनकर चट हमारा प्रेम नहीं उमड पडेगा। बात यह है कि प्रेम एकमात्र अपने ही अनुभव पर निर्भर रहता है; पर श्रद्धा अपनी सामाजिक विशेषता के करण दूसरो के अनुभव पर भी जगती है। रूप की भावना का बहुत कुछ सम्बन्ध व्यक्तिगत रूचि से होता है। अतः किसी के रूप और हमारे बीच यदी तीसरा व्यक्ति आया तो इस व्यापार में सामाजिकता आ गई; क्योंकि हमें उस समय यह ध्यान हुआ कि उस रूप से एक तीसरे व्यक्ति को आनंद या सुख हमें भी मिल सकता है।

जब तक हम किसी के रूप का बखान सुनकर 'वाह वाह' करते जायेंगे तब तक हम एक प्रकार के लोभी अथवा रीझने वाले या कदरदान ही कहलाएंगे पर जब हम उसके दर्शन के लिए आकुल होंगे, उसे बराबर अपने सामने ही रखना चाहेंगे. तब प्रेम का सुत्रपात समझा जायेगा। श्रद्धा भावन पर श्रद्धाभाव अपना किसी प्रकार का अधिकार नहीं चाहता पर प्रेमी प्रिय के हृदय पर अपना अंधकार चाहता है।

श्रद्धा एक मानसिक भाव है, इससे अपनि श्रद्धा के बदले में हम आश्रेय से अपने लिए कोई बात नहीं चाहते । श्रद्धा धारण करते हुए हम अपने को उस, व्यक्ति में समझते है जिसके किसी अंश पर चाहे हम व्यक्ति रूप में उनके अन्तर्गत न भी हो जान बुझकर उसने कोई शुभ प्रभाव डाला। श्रद्धा स्वयं ऐसे कामों के प्रतिकार में होती है जिसका शुभ प्रभाव अकेले हम पर नहीं बल्कि सारे मनुष्य समाज के प्रति निधिरूप में प्रकट करते है।

सदाचार पर श्रद्धा और अत्याचार पर क्रोध प्रकट करने के लिए जितने ही अधिक लोग तत्पर पाये जायेंगे उतना ही वह समाज जागृत समझा जायेगा। श्रद्धा की विशेषता एक इसी बात से समझ लिजिए कि जिस पर हम श्रद्धा रखते हैं उस पर चाहते है कि और लोग भी श्रद्धा रखें पर जिस पर हमारा प्रेम होता है उससे और अनेक आदमी प्रेम रखे इसकी हमें परवा क्या इच्छा ही नहीं होती; क्योंकि हम प्रिय पर लोग वश एक प्रकार का अन्याय अधिकार या इजारा चाहते है श्रद्धालू अपने भाव में संसार को भी सम्मिलित करना चाहता हैं, पर प्रेम नहीं।

श्रद्धा का मूल–तत्व है दूसरे का महत्व स्वीकार। अतः जिसकी स्वार्थ बद्ध दृष्टि अपने से आगे नहीं जा सकती अथवा अभिमान के कारण जिन्हें अपनी से बड़ाई के अन्तर्गत की लत–लग गई है उनकी इतनी समाई नहीं कि वे श्रद्धा ऐसे पवित्र भाव को धारण करें। स्वार्थियों और अभिमानियों के हृदय में श्रद्धा नहीं टिक सकती। उनका अन्तकरण संकुचित और मलिन होता है कि वे दूसरों की कृति का यथार्था मूल्य नहीं परख सकते।

'प्रतिभा, शील, साधन सम्पत्ति सम्बन्धिनी।

प्रतिभा से मेरा अभिप्राय अन्तःकरण की उस उद्भाविका क्रिया से है जिसके द्वारा कला, विज्ञान आदि विभिन्न क्षेत्रों में नई नई बातें या कृतियाँ उपस्थित की जाती है। यह ग्रहण और धारणा शक्ति से भिन्न है, जिसके द्वारा इधर–उधर से प्राप्त ज्ञान संचित किया जाता है। कला सम्बन्धिनी श्रद्धा के लिए श्रद्धालू में भी थोडी बहुत मार्मिक निपुणता चाहिए, इससे उसका अभाव कोई भारी त्रुटि नहीं, वह क्षम्य है। यदि किसी उत्तम काव्य या चित्र की विशेषता न समझने के कारण हम कवि या चित्रकार पर श्रद्धा कर न सके तो यह हमारा अनाडीपन है– हमारे रुचि संस्कार की त्रुटि है। इसका उपाय यही है कि समाज कला सम्बन्धिनी मर्मज्ञता के प्रचार की व्यवस्था करे,

जिससे विविध कलाओं के सामान्य आदर्श की स्थापना जन समूह में हो जाये । पर इतना होने पर भी कला सम्बन्धिनी रुचि की विभिन्नता थोडी बहुत आवश्यक रहेगी।

शील सम्बन्धिनी श्रद्धा प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। शील या धर्म के सामान्य लक्षण संसार के प्रत्येक सभ्यजन्य समुदाय में प्रतिष्ठित है। महात्मा गांधी ने शील की व्याख्या करते हुए उसे चरित्र की धारावाहिकता कहा है। इसका अर्थ है चरित्र की निरन्तर, उत्कृष्टता। उस पूण्य प्रवाह में कभी भी अनरोध न उपस्थित होने देना। प्रतिकूलताओं के बीच भी अपने उच्च चारित्रिक स्तर को बनाए रखना। जीवन में इसी शील शालीनता का समावेश करना होगा, तभी सुख–शान्ति और आनन्द उल्लास की बढ़ी चढी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो सकेगी। मनुष्य समाज की स्थिति है, अतः उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार का रुचि भेद, मत भेद आदि नहीं। सदाचारी के प्रति यदि हम श्रद्धा नहीं रखते तो समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते। यदि किसी को दूसरों के कल्याण के लिए भारी स्वार्थ त्याग करते देख हमारे मुँह से धन धय भी न निकला तो हम समाज के किसी काम के न ठहरे, समाज को हमसे कोई आशा नही, हम समाज में रहने योग्य नहीं। किसी कर्म में प्रवृत होने से पहले यह स्वीकार करना आवश्यक होता है कि वह कर्म या तो हमारे लिए या समाज के लिए अच्छा है।

इस प्रकार की स्वीकृती कर्म की पहली तैयारी है। श्रद्धा द्वारा हम यह आनन्दपूर्वक स्वीकार करते हैं कि कर्म के अमूक–अमूक दृष्टान्त धर्म के है अतः श्रद्धा धर्म की पहली सीढी है। धर्म के इस प्रथम सोपान पर प्रत्येक मनुष्य को रहना चाहिए जिसमें जब कभी अवसर आये तब वह कर्म रूपी दूसरे सोपान पर हो जाये।

साधन सम्पत्ति सम्बन्धिनी श्रद्धा की बात। यहाँ पर साधन–सम्पन्नता का ठीक–ठीक भाव समझ लेना आवश्यक है। साधन सम्पत्ति का दुरुपयोग भी हो सकता है, सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी हो सकता है। किसी को पद्य रचने की अच्छी अभ्यास सम्पन्नता है। यदि शिक्षा द्वारा उसके भाव उन्नत है, वह सहृदय है तो वह अपनी इस सम्पन्नता का उपयोग मनोहर उच्चभावपूर्ण काव्य प्रस्तुत में कर सकता है, उसकी अवस्था ऐसी नहीं है तो वह या तो साधारण आत–शून्य गद्य को गीतिका शिखरिणी आदि विभिन्न छन्दों में परिणित करेगा या अपनी भ ी और कुरुचिपूर्ण भावनाओं को छन्दोबद्ध करेगा । उसके इस कार्य पर श्रद्धा रखनेवाले की बहुत मिल जायेंगे ऐसे व्यक्ति के प्रति जो श्रद्धा होगी है वह साधन सम्पन्नता पर ही होती है, साहित्य को पूर्णता पर नहीं।

निष्कर्ष :

प्रेम निस्वार्थ होता है जो चाहने वाले से कोई भी कामना नही रखता है। वास्तविक प्रेम मानव मन की या फिर कहे तो एक सुखद अहसास है । प्रेम त्याग, समर्पण, है, प्रेम आपको विनम्र बनता है । हम जब प्रेम से भरे होते है तो सभी के लिए हमारे दिल में प्रेम भरे भाव होते हैं जब किसी एक के लिए प्रेम न किसी अन्य के लिये दिल में नफरत भरी हो तो वो प्रेम का आभासी रूप लेता है। हमें सिर्फ महसूस होता है कि हमारा प्रेम सच्चा है, जबकी वो प्रेम होता ही नहीं है बल्कि सिर्फ आसक्ती होती है। प्रेम व्यक्ति को साहस देता शक्ति प्रदान करना है और हमें जिम्मेदार बनता है प्रेम की भी कुछ मर्यादाएँ है रेम में गुस्से का कोई स्थान ही नहीं होता है।

ऊपर कहा जा चुका है कि श्रद्धा के विषय तीन है– शील, प्रतिभा और साधन सम्पत्ति, शील या धर्म से समाज की स्थिति, प्रतिभा से सृजन, और साधन–सम्पत्ति से शील साधन और प्रतिभा विभा दोनों की सम्भावना है। इससे सिद्ध होता है कि जिन कर्मों के प्रति श्रद्धा प्रेम और श्रद्धा होती है उनका होना संसार को बांधती है । यही विश्वभावना श्रद्धा भी प्रेरणा का मूल है।